पूज्य ललचंदभाई के प्रवचन
प्रवचन नंबर: LA ३३६
श्री नियांसार गाथा ४९-५० और कलश ७३
राजकोट, ता। नवंबर १९८७

Version 1

श्री नियमसारजी परमागम शास्त्र है। उसका शुद्धभाव अधिकार। अर्थात् शुद्धात्मा का अधिकार अथवा उपादेय का अधिकार है। आत्मा उपादेय है ऐसा आत्मा आत्मा को उपादेय है ऐसा अधिकार है। उसकी गाथा ४९ पूरी हुई। उसके बाद का एक श्लोक है समयसार का, वह देते हैं।

यद्यपि व्यवहारनय इस प्रथम भूमिका में जिन्होंने पैर रखा है ऐसे जीवों को, अरेरे! हस्तावलंबरूप भले हो, क्या कहते हैं? यद्यपि व्यवहारनय अर्थात् गुण-गुणी का भेद, ज्ञान वह आत्मा, दर्शन वह आत्मा, इसप्रकार प्रथम अनुभव से पहले, अनुमान में शुद्धात्मा का निर्णय करने की भूमिका जब होती है तब भले ही वह व्यवहारनय का अवलंबन लेकर निश्चय तक निर्णय करे। तो प्रथम भूमिका में जिन्होंने पैर रखा है अर्थात् जिनको सम्यग्दर्शन प्राप्त होने का काल पक गया है, ऐसे जीवों को प्रथम ज्ञान वह आत्मा, देखे वह आत्मा, जाने वह आत्मा, उसके द्वारा वे दलील करते हैं कि ऐसे जीवों को भी, **अरेरे! हस्तावलंबरूप भले हो.**

जैसे सीढ़ी के ऊपर चढ़ते हुए, चढ़ा न जा सकता हो तो सहारा लेता है। चौदह पैड़ी की सीढ़ी, सहारा लेता है लेकिन वह सहारा लेकर भी सहारा छोड़कर आगे बढ़ता है। सहारा छोड़ने के लिये है। सहारा लेकर सहारे के पास खड़ा रहे तो आगे नहीं बढ़ेगा। ऐसे ही, जो शुद्धात्मा के स्वरूप को नहीं जानता ऐसा अनादि का अज्ञानी जीव, पहली भूमिका में भले जाने वह आत्मा, देखे वह आत्मा, जाननेवाला आत्मा है, करनेवाला नहीं, जाननहार जानने में आता है, ऐसे भेद से भले वह निर्णय करे लेकिन अरेरे! आहाहा! और हस्तावलंब के तुल्य भले ही कहा हो; सहारे के रूप में भले ही व्यवहारनय से निश्चय तक पहुँचना कहा हो,

तथापि जो जीव चैतन्यचमत्कारमात्र, पर से रहित ऐसे परम पदार्थ को अंतरंग में देखते हैं, भेद का लक्ष छोड़कर अभेद में जाते हैं, ऐसे जीवों को यह व्यवहारनय कुछ प्रयोजनवान नहीं है। **व्यवहारनय कुछ नहीं है।** अर्थात् अभेद की दृष्टि में भेद नहीं दिखता। भेद के द्वारा निर्णय होता है। लेकिन भेद के द्वारा आत्मा का प्रत्यक्ष अनुभव नहीं होता। भेद के द्वारा, जैसे कि, जीववस्तु उपयोग लक्षण के द्वारा जीव को जानती है। ऐसे ही ज्ञान के द्वारा आत्मा जानने में आता है। ऐसा भेद भले ही प्रथम आया, लेकिन जहाँ साक्षात् अभेद का अनुभव होता है, वहाँ उस भेद का लक्ष छूटकर अभेद हो जाता है।

तब अरे! अरे! खेद की बात है कि जब आत्मा प्रत्यक्ष अनुभव करता है तब व्यवहारनय कुछ नहीं है। अर्थात् व्यवहार का लक्ष छूट जाता है। भेद का लक्ष छूटकर अभेद का लक्ष होता है। अरेरे! खेद की बात है! खेद, आहाहा! यह भेद के द्वारा अभेद का अनुमान करना वह खेद है, वह अच्छा नहीं

है। उपयोग में उपयोग है, वह खेद की बात है। राग में तो आत्मा है नहीं, देह में तो आत्मा है नहीं, वह तो व्यवहार ही नहीं है। आहाहा! उसमें तो निश्चय स्वरूप का अनुमान भी नहीं होता है। उसमें तो अज्ञान द्रढ़ हो जाता है। लेकिन उपयोग में उपयोग है, और उपयोग में क्रोधादि नहीं है, ऐसे भेदज्ञान का विचार करके, भेद द्वारा अभेद का अनुमान करता है अरेरे! वह भी खेद की बात है।

वह भी विकल्प है, उसमें आत्मा का अनुभव नहीं है। लेकिन उस भेद का लक्ष छोड़कर, जब प्रत्यक्ष ज्ञायक चिदानंद भगवान आत्मा को अंतर में देखता है, तब उस समय व्यवहारनय कुछ नहीं है। अर्थात् कि भेद का लक्ष छूट जाता है, आहाहा! **तथापि जो जीव चैतन्यचमत्कारमात्र, पर से रहित** और परिणाम से रहित। परिणाम मात्र पर है, परभाव है और परद्रव्य है, आहाहा! 'यह ज्ञान वह आत्मा' - ये ज्ञान परद्रव्य है। वह ज्ञानपर्याय भी परद्रव्य है और गुण वह भी परद्रव्य है। क्योंकि गुणी में गुण का भेद किया तो उसको परद्रव्य कहने में आता है।

२५२ गाथा में आया है। क्या कहा है? कि उपयोग में उपयोग है अर्थात् ज्ञान की पर्याय में आत्मा है। वह तो पर्याय है, उस पर्याय से तो आत्मा रहित है। लेकिन ज्ञान वह आत्मा, ऐसा गुण का भेद करता है उसमें भी आत्मा का अनुभव नहीं होता। वह भी विकल्प है। अरे! अरे! लेकिन सीधा अनुभव होता नहीं है इसीलिए आत्मार्थी जीव को, मोक्षार्थी जीव को, सम्यक् सन्मुख जीव को इतने भेद के द्वारा अभेद के निर्णय का काल आता है। तो भी जब अभेद में पहुंचता है, आहाहा! तब 'ज्ञान वह आत्मा'- ऐसा भेद और भेद के लक्षवाला विकल्प और इन्द्रियज्ञान, अनुमान ज्ञान, मानसिक ज्ञान का अभाव होकर अनुभव होता है, आहाहा! उस समय व्यवहारनय कुछ नहीं है, आहाहा!

उस समय व्यवहारनय कुछ नहीं है। और जब तक अभेद में नहीं पहुँचता तब तक भेद की अधिकता नहीं होती। 'ज्ञान वह आत्मा' का विचार आता है लेकिन समझता है कि ज्ञान वह आत्मा नहीं है। ज्ञानगुण भी परद्रव्य है और ज्ञान उपयोग भी परद्रव्य है। ये कहाँ लिखा होगा कि ज्ञानगुण परद्रव्य है? ये २५२ कलश में लिखा है, कलश टीकाकार ने। और उपयोग परद्रव्य है- ये कहाँ लिखा है? कि ५० नंबर की गाथा में अभी यही आनेवाला है, आहाहा!

पर्याय मात्र परद्रव्य है। आयेगा अभी। उन गुणभेद और पर्यायभेद को उलंघकर और अभेद, सामान्य, टँकोत्कीर्ण, आहाहा! उस दृष्टि में ज्ञायक अभेद सामान्य जानने में आता है, दूसरा कुछ अब जानने में नहीं आता। वह समय जब आता है तब भेदरूप व्यवहार नहीं होता। इसलिए व्यवहार कुछ है नहीं। व्यवहार का लोप हो गया। कि व्यवहार का लोप करते हो? कि हाँ! (व्यवहार का) लोप करो तो निश्चय की प्राप्ति होगी। जब तक व्यवहार में खड़ा रहेगा तब तक निश्चय हाथ में नहीं आयेगा। लोप करते हो? कि हाँ! सर्वज्ञ भगवान ने लोप करने के लिये कहा है। ऐसा लिखते हैं व्यवहारनय कुछ नहीं है। अनुभव के काल में भेद का लक्ष छूट जाता है। वह कलश हुआ।

अब दूसरा कलश, आहाहा! इस पाँच नंबर के कलश में कलश टीकाकार ने भेद के द्वारा अभेद का अनुमान होता है, यह बात उन्होंने ली है। कलश टीकाकार ने पाँच नंबर के कलश में ऐसा लिया है। देह वह आत्मा और राग वह आत्मा, वह तो है ही नहीं बात। वह तो स्थूल बिल्कुल जो अनजान होता है तत्त्व से, उसके लिये मोक्षमार्ग प्रकाशक कर्ता ने भी लिया है। और लिया जा सकता

है। लेकिन जब अध्यात्म की बात में आया तब गुण और गुणी का भेद इतना व्यवहार है। राग अभेद का भेद नहीं है, इसीलिए राग आत्मा के अनुभव में तो काम नहीं आता लेकिन अनुमान में भी काम नहीं आता। आहाहा! क्योंकि राग तो जड़ है। जड़ द्वारा आत्मा का अनुमान नहीं होता। ज्ञान द्वारा आत्मा का अनुमान होता है। अनुभव के समय गुणभेद भी नहीं दिखता है। व्यवहारनय कुछ नहीं है, आहाहा! व्यवहारनय है ही नहीं, आहाहा!

अब, ७३ नंबर का कलश। टीकाकार स्वयं कहते हैं। अब अमृतचंद्राचार्य के श्लोक का आधार देते हैं। **श्री समयसार की आत्मख्याति नामक टीका में पाँचवें श्लोक द्वारा,** लो! यह वही श्लोक है। पाँचवाँ श्लोक। वही निकला। पाँचवाँ श्लोक समयसार में है न? वह ही है। लेकिन उसका ज्यादा अच्छा अर्थ खोला है। कलश टीकाकार ने। अच्छा अर्थ किया है।

मुमुक्षुः- उसमें लिया है, गुण गुणी का भेद वो ज्ञान उत्पन्न होने का एक अंश है।

उत्तरः- अंश है। अंग है-अंग है। तो भी अनुभव (के) काल में कुछ नहीं है। वह कलश, जब बाबूभाई फतेहपुरवाले संघ लेकर दक्षिण में गये थे और गुरुदेव वहाँ बैंगलोर पधारे थे, तब मैं भी वहाँ पर था बैंगलोर प्रतिष्ठा के समय, तब पूरा संघ आया था। और सुबह को बाबूभाई ने कहा कि तुम यह कुछ लो सुबह को, एक घंटे, क्योंकि यहाँ प्रवृत्ति तो दूसरी कुछ होती नहीं है।

अतः गुरुदेव के व्याख्यान के बाद मैंने यह पाँचवाँ कलश लिया था। वह पाँचवाँ कलश लिया तब हीराभाई दहेगामवाले बोले, कि यात्रा, इतने टाईम यात्रा के बाद आज संतोष हुआ। पाँचवा कलश। कलश टीका में से लिया था। 'गुण-गुणी का भेद भी वह ज्ञान उत्पन्न होने का एक अंग है।' व्यवहार-व्यवहार अंग, आहाहा! वह भी व्यवहार है। राग और देह और कर्म, वो तो व्यवहार है ही नहीं क्योंकि उनकी जाति ही अलग है, कुजाति है।

मुमुक्षुः- वह तो भिन्न वस्तु है।

उत्तरः- वह तो भिन्न वस्तु है। वह तो जड़ है। जड़ में चेतन का अनुमान कहाँ से हो? अनुभव तो नहीं होता किन्तु अनुमान भी नहीं होता। अनुमान होता है, मीठी वह शक्कर, सफेद वह शक्कर, पीला वह सोना। उसके द्वारा सोने का अनुमान हो सकता है। इसीप्रकार ज्ञान वह आत्मा, जाने वह आत्मा, देखे वह आत्मा, आहाहा! **'जानूँ मैं जाननहारा, देखूँ मैं देखनहारा'**, इतना भेद आता है वह भी अनुभव के काल में व्यवहार कुछ है ही नहीं। आहाहा! ७३ नंबर का कलश, बोलो बेन।

शुद्धनिश्चयनयेन विमुक्तौ

संसृतावपि च नास्ति विशेषः ।

एवमेव खलु तत्त्वविचारे

शुद्धतत्त्वरसिकाः प्रवदन्ति ।।७३।।

४८ नंबर की गाथा जिसका हमने स्वाध्याय किया कि संसारी जीव और सिद्ध जीव में कोई फर्क नहीं है, उसके जैसा ही यह एक कलश है।

शुद्धनिश्चयनय से अर्थात् ज्ञान को अंतर में मोड़कर शुद्धात्मा को जब देखने में आता है तब,

आहाहा! मुझमें और सिद्ध में कोई अंतर मुझे नहीं लगता है, आहाहा! शास्त्रसन्मुख के ज्ञान से अंतर लगेगा। विकल्प से अंतर लगेगा। इन्द्रियज्ञान से अंतर लगेगा। अनुमान में खड़ा रहेगा तो अंतर लगेगा। लेकिन **शुद्ध निश्चयनय से** अर्थात् ज्ञान को अंदर में मोड़कर, उस उपयोग को उपयोग में जोड़ने पर शुद्धउपयोग होता है, उपयोग को उपयोग में जोड़ने पर। उपयोग में उपयोग तो है, लेकिन उपयोग को उपयोग में जब जोड़ देता है, तब शुद्ध उपयोग की दशा हुई, तब शुद्धनिश्चनयनय से देखने में आये तो, मैं देखता हूँ मेरी आत्मा को तो मेरे में और सिद्ध में कुछ फर्क अभी मुझे लगता नहीं है, आहाहा! जैसा सिद्ध का आत्मा, वैसा मेरा आत्मा, और जैसा निगोद में, ऐसा सिद्ध में, और ऐसा मुझमें, कुछ अंतर नहीं है। कल बोले थे श्लोक, आहाहा! निगोद मँझार, क्या था?

मुमुक्षुः- **जो निगोद में सो ही मुझमें सो ही मोक्ष मँझार, निश्चय भेद कछु है नाहीं, भेद गिने संसार।**

उत्तरः- **कछु है नाहीं, भेद गिने (संसार)।** निगोद में, सिद्ध में और अपने में भेद नहीं है, फिर भी भेद गिनता है तो संसार, अर्थात् मिथ्यात्व, अज्ञान, आहाहा! तीनों जगह पर आत्मा तो चिदानंद ज्ञायक परमात्मा विराजमान है। वह कहते हैं। **शुद्धनय निश्चयनय से** अर्थात् अंतर्मुख ज्ञायक की तरफ नजर करके, उपयोग में उपयोग को जोड़कर, एकाग्र होकर शुद्ध उपयोग दशा प्रगट होती है, ऐसी दशा में देखने में आये तो मुक्ति में, मोक्ष में, ऐसे ही संसार में, आहाहा! अंतर नहीं है। उन दो पर्यायों का अंतर है लेकिन दोनों की पर्याय में शुद्धात्मा है, उसमें अंतर नहीं है, आहाहा! सोने के दो आकार होते हैं सोने के, एक कंगन और एक हार। लेकिन तुम कंगन का आकार और हार का आकार मत देखो तो दोनों में सोना- सोना ही है, आकार दिखता नहीं है। इसीप्रकार भगवान आत्मा में दृष्टि अंदर में गई, मेरे में और मोक्ष में मुझे कोई अंतर नहीं दिखा। क्योंकि अभेद के लक्ष में जाने पर अपने परिणाम का भेद नहीं दिखता और सिद्ध पर्याय का भेद भी दिखता नहीं है। दोनों ही एक समान हैं, आहाहा! सिद्ध परमात्मा, उनका आत्मा और मेरा आत्मा दोनों ही समान हैं। उनके जैसा मैं हूँ और मेरे जैसे वे हैं।

उनके जैसा मैं हूँ प्रथम, निमित्त- नमूना। हे भगवान! आपके जैसा ही मेरा स्वभाव है। और जैसे ही अनुभव किया और अनुभव के बाहर निकला, अरे! मेरे जैसे आप हो। आपके जैसा मैं नहीं! जैसा मेरा आत्मा है न, ऐसे आप हो। उपादान का जोर देख लेना। निमित्त गौण हो गया। पहले निमित्त की मुख्यता थी, आहाहा! बालक था तब तक, अनुभव नहीं था तब तक प्रभु! जैसे आप परमात्मा हो न ऐसा मैं हूँ। आहाहा! फिर जैसे ही अनुभव हुआ, अरे! आहाहा! आज तो मुझे आपके जैसा अनुभव हुआ तो मैं जैसा हूँ ऐसे आप हो, आहाहा! पूरी बात पलट गई।

'शुद्धनिश्चयनय से मुक्ति में तथा संसार में अंतर नहीं है;' अंतर गिनता है संसारी। अंतर गिने वह (संसारी)। क्या कहते हो? इस निगोद और सिद्ध की आत्मा में कोई अंतर नहीं है? आत्मा में अंतर नहीं है, ऐसा हम कहते हैं। हमारी बात जरा ध्यान देकर सुन। पर्याय में अंतर नहीं है, ऐसा हम नहीं कहते हैं। तू सुनता ही नहीं है। हम पर्याय में अंतर नहीं है ऐसी हमारी वाणी कहाँ निकली? हम तो कहते हैं कि दोनों की आत्मा में अंतर नहीं है, आहाहा! अनात्मा में भले ही अंतर हो लेकिन आत्मा में

अंतर नहीं है।

परद्रव्य में भले अंतर हो, लेकिन स्वद्रव्य में अंतर नहीं है। आहाहा! सिद्ध की पर्याय भी परद्रव्य और यहाँ की पर्याय भी परद्रव्य। परद्रव्य में भले ही अंतर हो लेकिन स्वद्रव्य में मेरे में और उनमें अंतर नहीं है। अंतर गिनता है वह संसारी है। सामान्य को देख न? यहाँ का सामान्य और वहाँ का सामान्य दोनों ही समान हैं। फिर जरा ज्ञान को लंबा करेगा तो पर्याय भी तुझे एक जैसी दिखेगी, आहाहा! **'शुद्धनिश्चयनय से मुक्ति में तथा संसार में अंतर नहीं है;' ऐसा ही वास्तव में, तत्त्व विचारने पर** अर्थात् तत्त्व का अनुभव करने पर, विचारने पर अर्थात् अनुभव, 'कर विचार तो पाम'। ज्ञान, विचार अर्थात् ज्ञान, अतीन्द्रिय ज्ञान। विचार मतलब मानसिक ज्ञान नहीं।

तत्त्व विचारने पर (-परमार्थ वस्तुस्वरूप का विचार अथवा निरूपण करने पर), अथवा अनुभव करने पर, **शुद्ध तत्त्व के रसिक पुरुष कहते हैं।७३।** मेरे में और मुक्ति में अंतर नहीं है। जैसा मेरा आत्मा है, आहाहा! दो प्रकार के सोने हैं। एक कंगन का और एक पोंची का। दोनों के सोने में अंतर नहीं है। लेकिन अंतर दिखता है न? तू एकबार मेरी बात सुन, कि सोने में अंतर नहीं है। मैंने ऐसा कब कहा कि आकार में अंतर नहीं है। तू आकार को सोना मान रहा है। हम तो कहते हैं कि सोने में आकार नहीं होता, इसलिए दोनों सोने एक समान हैं। आकार को मत देख। सोने को, सामान्य को देख दोनों में, आहाहा!

मुमुक्षुः- क्योंकि आकार वह सोना नहीं है।

उत्तरः- नहीं है, आहाहा! **(-परमार्थ वस्तुस्वरूप का विचार अथवा निरूपण करने पर) शुद्ध तत्त्व के रसिक पुरुष,** आहाहा! शुद्धात्मा के रसीले, अनुभवी पुरुष, ऐसा कहते हैं कि हमारे में और सिद्ध में कोई अंतर नहीं है। हे भव्य आत्माओं! तुम तुम्हारी पर्याय को और सिद्ध की पर्याय को मत देखो। तुम्हारी पर्याय गौण करो और उनकी पर्याय भी गौण करो, तो दोनों का आत्मा समान, सिद्ध जैसा अभी विराजमान है। लो! इतनी बात हुई। अब ५० नंबर की (गाथा) आती है। गाथा ऊँचे में ऊँची है। आहाहा! इस बार की क्लोसिंग (closing) हो रही है। दो महिने हुए। हमें परसों को जाना है, इसलिए यह प्रीतिभोज है, प्रीतिभोज। दो महिना के बाद प्रीतिभोज आया है। आहाहा! प्रीतिभोज कहलाता है न? आहाहा! प्रीतिभोज में बादाम का मैसूर(पाक) होता है। आटे का मैसूर नहीं और अड़दिया (उड़द दाल की मिठाई) जामनगर का नहीं, आहाहा! शारदाबेन का मैसूर नहीं चने के आटे का। यह तो बादाम के मैसूर की यहाँ पर बात चलती है अभी। ये मैसूर बनाकर ले आते हैं और ये अड़दिया लाते हैं। ...आहाहा!

प्रभु सुन! तेरे भव के अंत की बात मैं करता हूँ। ध्यान देकर सुनना। तू पर्याय पर नजर रखेगा, तो ये समझ में नहीं आयेगा तुझे। पर्याय को गौण कर। पर्याय को पर्याय में रहने दे। पर्याय की अस्ति लेकिन मेरे में नास्ति। ऐसी मेरी अस्ति। अस्ति के ऊपर आजा न। अस्ति की मस्ती तुझे (आएगी)। आहाहा! ऐसी ५० नंबर की गाथा, बादाम के मैसूर की, हर्षपूर्वक जीमने की गाथा आती है।

पुव्वुत्तसयलभावा परदव्वं परसहावमिदि हेयं ।

सगदव्वमुवादेयं अंतरतच्चं हवे अप्पा ।।५०।।

पर-द्रव्य हैं परभाव हैं पूर्वोक्त सारे भाव ही ।

अतएव हैं ये त्याज्य, अन्तःतत्त्व है आदेय ही ।।५०।।

आहाहा! एक शुद्धात्मा उपादेय है। बाकी सभी परभाव होने से परद्रव्य हैं प्रभु! **अन्वयार्थः- पूर्वोक्त सर्व भाव,** आहाहा! चार भाव मुख्यरूप से उदय, उपशम, क्षय और क्षयोपशम, आहाहा! वे **पूर्वोक्त सर्व भाव पर स्वभाव हैं,** आत्म स्वभाव नहीं हैं। आत्मा का स्वभाव नहीं है। परिणाम को परस्वभाव कहते हैं। और त्रिकाली द्रव्य को स्वस्वभाव कहते हैं। और पर पर्यायें परस्वभाव होने से वे **परद्रव्य हैं**, आहाहा! और **परद्रव्य हैं इसलिए हेय हैं** परस्वभाव हैं, परभाव हैं, परभाव होने से परद्रव्य हैं, परद्रव्य होने से हेय हैं। उसका लक्ष करने योग्य नहीं है। हेय है उसका अर्थ क्या? कि उसका जानना बंद कर दे, आहाहा!

परिणाम है लेकिन परिणाम के सामने देखना बंद कर दे, उसका नाम हेय। उन पर्याय को टुकड़ा करके अलोक में पार्सल कर देना पोस्ट ऑफिस में जाकर, ऐसा कहने का आशय नहीं है। परिणाम को परिणाम में रहने दे, आहाहा! परद्रव्य को परद्रव्य में रहने दे और स्वद्रव्य का अवलंबन ले ले, आहाहा! देह को देह में रहने दे। कर्म को कर्म में रहने दे, यह तो स्थूल। लेकिन परिणाम जो प्रगट होते हैं समय-समय पर, वे प्रगट होते हैं वे परभाव हैं। और प्रगट होते हैं इसलिए वे परद्रव्य हैं। और जो प्रगट है वह स्वद्रव्य है, आहाहा! एक प्रगट है और अनेक भाव प्रगट होते हैं। प्रगट होते हैं और नाश होते हैं, प्रगट होते हैं और नाश होते हैं, प्रगट होते हैं और नाश होते हैं। और एक प्रगट है-है-है, अविनाशी। आहाहा!

इसलिए हेय हैं, अंतःतत्त्व ऐसा स्वद्रव्य- लो! परद्रव्य और स्वद्रव्य का विभाजन। स्वद्रव्य और परद्रव्य का विभाजन- विभाग, आहाहा! **अंतःतत्त्व ऐसा स्वद्रव्य-आत्मा-उपादेय है।** उन सातों ही तत्त्व के समूह को परद्रव्य कहा था। लो! निकालो ३८ वीं गाथा। जरा देख लेते हैं। इसके साथ मिलान करने जैसी है। ३८ और ५० दोनों ही गाथाओं में सारा माल भरा है, आहाहा! **जीवादि बाह्यतत्त्व हेय हैं;** आहाहा! **जीवादि बाह्यतत्त्व हेय हैं; कर्मोपाधिजनित गुणपर्यायों से व्यतिरिक्त** (अर्थात्) रहित **आत्मा आत्मा को उपादेय है।** आहाहा!

टीकाकार कहते हैं:- **जीवादि सात तत्त्वों का समूह परद्रव्य होने के कारण** मोक्ष की पर्याय परद्रव्य है। तेरा शुभभाव तो कहीं का कहीं रह गया, आहाहा! यह यात्रा और भगवान की पूजा और दान और शील और तप और ब्रह्मचर्य और सामायिक और प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और आलोचना आहाहा! वे तो शुभभाव हैं, प्रभु! वे तो शुभभाव तो परद्रव्य हैं, हेय हैं लेकिन संवर, निर्जरा और मोक्ष की पर्याय के जो भेद उत्पन्न होते हैं, वे भी, आहाहा! बहिरतत्त्व होने के कारण परद्रव्य हैं और परद्रव्य होने के कारण उपादेय नहीं हैं, अतः हेय हैं, आहाहा! कुंदकुंद भगवान ने हेय कहा, इन्होंने कहा (कि) उपादेय नहीं हैं। एक की एक बात (है)।

हेय हैं ऐसा कहा, देखो! है न ३८ वीं गाथा में, **जीवादि बाह्यतत्त्व हेय हैं;** कुंदकुंद भगवान ने हेय कहा। टीकाकार क्या कहते हैं? कि **जीवादि सात तत्त्वों का समूह परद्रव्य होने के कारण वास्तव में उपादेय नहीं है।** आहाहा! बोलो! सम्यग्दर्शन की प्राप्ति का नवतत्त्व निमित्त है। उपादान

नहीं है। क्या कहा? **'तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्'**, नवतत्त्व का श्रद्धान उसे सम्यग्दर्शन कहने में आता है, लेकिन सात तत्त्व अथवा नव पदार्थ वे उपादान नहीं हैं, उनका आश्रय करने योग्य नहीं है। वे निमित्त हैं। और त्रिकाली स्वभाव उपादान है। पर्याय है वह निमित्त है। निमित्त अर्थात् संयोग है, स्वभाव नहीं है।

बहिरतत्त्व होने के कारण वह संयोग है और अंतःतत्त्व वह स्वभाव है। एक स्वभाव है और एक परभाव है। एक अंतःतत्त्व है और एक बहिरतत्त्व है। एक शुद्धात्मा उपादेय है और सात तत्त्वों के भेद हेय हैं, आहाहा! अंदर के अंदर में हैं। सात तत्त्व निमित्त हैं। निमित्त अर्थात् पर योग को निमित्त कहने में आता है। परिणाम का नाम निमित्त है। द्रव्य का नाम उपादान है। यहाँ पर्याय को क्षणिक उपादान नहीं कहते हैं क्योंकि वह परद्रव्य है इसलिए क्षणिक उपादान नहीं है।

मुमुक्षुः- एकदम सही है! परद्रव्य को ही निमित्त कहा जाता है।

उत्तरः- ये तो प्रीतिभोज है आज का। गोसरभाई कहते हैं एकदम जितना सूक्ष्म हो न उतना अब कह देना। फिर कब योग हो, न हो, वह तो आहाहा! स्वकाल के आधीन है। आत्मा के आधीन नहीं है, आहाहा! रहस्यपूर्ण चिठ्ठी में लिखते हैं। मिलना हो कि न हो, वह तो प्रारब्ध के आधीन है लेकिन पत्र तो लिखते रहना। ऐसा चिठ्ठी में है, आहाहा! ऐसे मिलना हो कि न हो, लेकिन यहाँ कहते हैं कि एक स्वद्रव्य और एक परद्रव्य। लेकिन किसी जगह पर उसे क्षणिक उपादान कहा है? यहाँ कहते हैं कि वह क्षणिक उपादान नहीं है किन्तु परद्रव्य है। और परद्रव्य को निमित्त कहा जाता है और स्वद्रव्य को उपादान कहा जाता है।

नवतत्त्व वे संयोग हैं, इसलिए परद्रव्य हैं। परद्रव्य हैं अतः निमित्त हैं लेकिन उपादान नहीं हैं। क्योंकि क्षणिक उपादान कहें तो जीव के परिणाम हो जायें और परद्रव्य कहें तो निमित्त हो जायें। यह (क्लिप) निमित्त है, सुनना! यह उपादान है कि निमित्त? देव, गुरु, शास्त्र निमित्त हैं या उपादान?

मुमुक्षुः- निमित्त।

उत्तरः- तो सात तत्त्वों का समूह निमित्त (है)। निमित्त किसलिए-क्यों कहा? (क्यों)कि परद्रव्य है इसलिए निमित्त, आहाहा! क्षणिक उपादान नहीं अभी। अभी नैमित्तिक नहीं और क्षणिक उपादान भी नहीं। लेकिन वह परस्वभाव होने से परद्रव्य है। एक स्वद्रव्य और एक परद्रव्य। बस! आहाहा! दो हिस्से हो गये। दो... (हिस्से).. एक स्वद्रव्य और एक परिणाममात्र परद्रव्य, आहाहा!

मुमुक्षुः- अध्यात्म की मस्ती है।

उत्तरः- अध्यात्म की ही मस्ती है।

मुमुक्षुः- एकमात्र शुद्ध अंतःतत्त्व खड़ा रहा।

उत्तरः- एक खड़ा रहा, वह स्वद्रव्य है और वह स्वद्रव्य होने से उपादेय है। परद्रव्य उपादेय नहीं है। परद्रव्य के आश्रय से धर्म नहीं होगा। जैसे निमित्त के आश्रय से धर्म नहीं होता, ऐसे ही सात तत्त्व परद्रव्य होने के कारण, उसका लक्ष जब तक करेगा भेद का, वह भेद है वह परद्रव्य है। भेद वह जीव के परिणाम नहीं और क्षणिक उपादान भी अभी नहीं, आहाहा! अभी उसे परद्रव्य कहते हैं। आचार्य भगवान को मस्ती चढ़ गई है। आहाहा! परद्रव्य को निमित्त कहा जाता है। परद्रव्य को

उपादान नहीं कहा जाता। आहाहा! वह परद्रव्य क्या है, अध्यात्म का? परिणाममात्र परद्रव्य है, आहाहा!

क्योंकि पर स्वभाव हैं। निमित्त जैसे पर(द्रव्य) है वैसे परिणाम भी पर(द्रव्य) हैं। द्रव्य को पर्याय छूती नहीं है, आहाहा! उपादान को निमित्त छूता नहीं है। उपादान भिन्न और निमित्त भिन्न। दोनों के बीच अत्यंत अभाव है। आहाहा!

मुमुक्षुः- द्रव्य को पर्याय चूमती नहीं है।

उत्तरः- चूमती नहीं है, स्पर्शती नहीं है, अड़ती नहीं है, आहाहा! क्योंकि परद्रव्य है। स्वद्रव्य को परद्रव्य छू जाये तो स्वद्रव्य का नाश हो जाये, आहाहा! **परद्रव्य है, इसलिए हेय हैं,** और **अंतःतत्त्व** , अंदर का तत्त्व, ये सब बहिरतत्त्व हैं। **ऐसा स्वद्रव्य-आत्मा उपादेय है।** आहाहा!

उसकी **टीकाः- यह, हेय-उपादेय,** हेय क्या और उपादेय क्या? भेदज्ञान की बात चलती है, आहाहा! अरे! शुभाशुभभाव बहिरतत्त्व तो हेय हैं, आहाहा! लेकिन यहाँ तो कहते हैं सात तत्त्व का समूह (हेय है)। व्यवहार रत्नत्रय के परिणाम तो हेय हैं लेकिन निश्चय रत्नत्रय के परिणाम भी परस्वभाव होने से परद्रव्य हैं। आहाहा! कौन कह सकता है समर्थ आचार्य के सिवाय? और महाविदेह में जाकर वाणी सुनी। ऐसी मस्ती चढ़ गई और शास्त्र लिख दिये, ओहोहोहो!

प्रभु! सुन, तेरे घर की बात है। एक स्वद्रव्य और एक परद्रव्य। परद्रव्य और स्वद्रव्य में मिलान मत करना। कि कहीं कहीं अनन्य लिखा है न? वह अनन्य लिखा है वह व्यवहार है। अन्य लिखा है वह निश्चय है।

यह, अर्थात् इस गाथा में हेय क्या और उपादेय क्या? अथवा **हेय** दूसरा शब्द, हेय का दूसरा शब्द **त्याग**। और **उपादेय** का दूसरा शब्द **ग्रहण**। त्याज्य क्या है और ग्राह्य क्या है? ग्रहण करने योग्य क्या है आत्मापने? आत्मापने किसको मानना? आहाहा! और कौन आत्मा नहीं है? आत्मा नहीं है इसलिए उसका लक्ष छोड़ देना। आत्मबुद्धि छोड़ देनी, आहाहा! **ग्रहण-त्याग के स्वरूप का कथन है। जो कोई विभावगुणपर्यायें हैं** विशेष गुण अर्थात् पर्यायें हैं, आहाहा!

द्रव्यपर्याय न लेकर गुणपर्यायें ली हैं। क्योंकि चार भाव हैं न, वे गुण पर्यायें हैं, व्यंजन पर्याय नहीं हैं। द्रव्य को व्यंजनपर्याय कहा जाता है। व्यंजनपर्याय बंध मोक्ष का कारण नहीं है। और गुणपर्याय है, चारों अर्थपर्याय हैं, आहाहा! उदय-उपशम-क्षय और क्षयोपशम। विभाव इसलिए कि विशेष है, आहाहा! विभाव अर्थात् विकार नहीं लेना, विशेष। विशेष अर्थात् चारों भाव उसमें, क्षायिक भाव भी उसमें आ जाता है। जो कोई विभावगुणपर्यायें हैं, हैं जरूर, लेकिन स्वद्रव्यपने हैं या परद्रव्यपने हैं?

मुमुक्षुः- परद्रव्यपने।

उत्तरः- आहाहा! यह सम्यग्दर्शन! प्रगट करना है उसका क्या करना? रहने दे। परद्रव्य को प्रगट करने की भावना नहीं होती, आहाहा! ध्यान ध्येय बन जायेगा और ध्येय रह जायेगा। कहते हैं कि एक शुद्धात्मा दिखता है, दूसरा कुछ दिखता नहीं हमें तो।

विभावगुणपर्यायें हैं वे पहले (४९वीं गाथा में) व्यवहारनय के कथन द्वारा उपादेयरूप से

कही गई थीं, जानने के लिये **कही गई थीं** । जानने योग्य हैं। यहाँ कहते हैं कि परद्रव्य जानने योग्य भी नहीं है, आहाहा! आश्रय करने योग्य तो नहीं लेकिन जानने योग्य भी नहीं है। उसको जानने जायेगा तो आत्मा जानने में नहीं आयेगा। जानने की बात तो ४९वीं गाथा में की थी। **उपादेयरूप से**, अर्थात् जानने के लिये कहा था। **किन्तु शुद्धनिश्चयनय के बल से (शुद्धनिश्चयनय से) वे हेय हैं।** जानने लायक भी नहीं हैं। जानने लायक तो स्वद्रव्य है, आहाहा! एक ज्ञानानंद परमात्मा! अपना आत्मा वही ज्ञान में ज्ञेय, ध्यान में ध्येय, आहाहा! और आचरण में वह आचरण एक आत्मा का ही है, दूसरा कुछ है नहीं। **वे हेय हैं।** शुद्धनिश्चयनय के बल से हेय हैं- यह खास बात है। क्या कहा? कि ये सात तत्त्व के जो भेद हैं, वे परभाव हैं और परद्रव्य हैं। यह हेय है, यह हेय है, यह हेय है, यह हेय है, ऐसे करने से हेय नहीं होता। लक्ष्य वहीं रहेगा। **किन्तु शुद्धनिश्चयनय के बल से** अर्थात् उपयोग वहाँ से पलट जाता है। भेद के ऊपर से हट जाता है और जहां अभेद के ऊपर उपयोग आया, ल वहाँ उसका(भेद का) लक्ष छूट गया। उसे 'हेय हुआ' कहने में आता है। वह ज्ञेय है तब तक उपादेय है। आत्मा ज्ञेय होता है और वह ज्ञेय नहीं होता, उसका नाम हेय है। फिर से, क्या कहा?

शुद्धनिश्चयनय के बल से ऐसा। ऐसा पाठ है, आहाहा! निश्चयनय के आश्रय से व्यवहारनय का निषेध हो सकता है। अद्धर से, व्यवहारनय के लक्ष से व्यवहारनय का निषेध नहीं होता। ग्रहणपूर्वक त्याग है। वह समझाते हैं। **परंतु शुद्धनिश्चयनय के बल से** अर्थात् अंतर्मुख उपयोग गया और शुद्धात्मा उपादेयरूप से दृष्टि में, अनुभव में आया, तब ज्ञायक वह मैं हूँ- ऐसा जहाँ अनुभव हुआ, वहाँ पर्याय के भेदों का लक्ष छूट गया। उनको जानना छूट गया। पर्यायार्थिक चक्षु सर्वथा बंद हो गये और द्रव्यार्थिक चक्षु उघड़ गये, तब अभेद दिखता है, भेद दिखता नहीं। अभेद में भेद अविद्यमान है, आहाहा! अभेद में पर्याय के भेद नहीं दिखते और गुणभेद भी नहीं दिखते, आहाहा! अकेला अभेद सामान्य-सामान्य को देखता हुआ और विशेष को नहीं देखता हुआ, आहाहा!

इस ध्यान के काल में आत्मा उपादेय होता है। ध्यान में आत्मा ध्येय होता है, आहाहा! ध्यान में ध्येय होता है तब पर्याय हेय हो जाती है। पर्याय ज्ञेयरूप से नहीं रहती। पर्याय यदि ज्ञेयरूप रहे तो हेय नहीं होगी, उपादेय हो जायेगी। यह तो पर्याय की आँख उघाड़ कर रखी। राग छोड़ने योग्य है, यह राग छोड़ने योग्य है, यह राग (छोड़ने योग्य है), ऐसा नहीं है। राग जानने में ही नहीं आता अंदर में जाने पर, आहाहा!

शुद्धनिश्चयनय के बल से, अंतर अनुभव के बल से, अनुभव के बल से हेय हैं, आहाहा! **किस कारण से** हेय हैं? वे हेय क्यों हैं? उसका कारण बताते हैं। **क्योंकि वे** - हेय हैं उसका कारण बताओ। हेय किसलिये? हम तो उन्हें आत्मा कहते हैं। स्वद्रव्य कहते हैं, आहाहा! हेय किसलिये? **क्योंकि वे परस्वभाव हैं**। उन चारों में कहीं भी पारिणामिकभाव लक्षण नहीं है, आहाहा! लक्षण के भेद से बड़ा भेद है, आहाहा! भाव भेद से भेद है, प्रदेश के भेद से भेद है, लक्षण के भेद से भेद है, उन चार भाव के प्रदेश भिन्न हैं, आहाहा!

राग के प्रदेश तो भिन्न लेकिन, शुद्ध पर्याय के प्रदेश (भी) भिन्न, क्योंकि परद्रव्य है। स्वद्रव्य और परद्रव्य एक प्रदेशी नहीं होते। स्वद्रव्य, उसका द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव भिन्न और परद्रव्य उसका

द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव भिन्न हैं। दोनों भिन्न हैं। अध्यात्म की पराकाष्ठा है यह। आहाहा! आत्मा स्वयं अभेद अनंत गुणों का पिंड वह स्वद्रव्य है। असंख्यात प्रदेशी अभेद एक प्रदेश वह स्वक्षेत्र है। स्वकाल अर्थात् उसकी अवस्थित स्थिति है, वह स्वकाल है। और भाव अर्थात् शक्ति, आहाहा! उसे स्वभाव कहने में आता है। वह स्वद्रव्य है। उस स्वद्रव्य के चार भेद भी नहीं हैं। परद्रव्य तो नहीं लेकिन स्वद्रव्य के चार भेद तो समझाने के लिये शिष्यों को कहे।

लेकिन आत्मा स्वयं स्वद्रव्य, आत्मा स्वयं स्वक्षेत्र, आत्मा स्वयं स्वकाल है और आत्मा स्वयं स्वभाव है। उसमें भेद-वेद हैं नहीं और सामने जो दूसरी पर्यायें हैं, वे परद्रव्य हैं। परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल और परभाव। परद्रव्य और परभाव तो स्पष्ट इसमें (लिखा) है। परद्रव्य हैं और परभाव हैं, ये तो (स्पष्ट) इसमें लिखा हुआ है। जो परक्षेत्र और परभाव हो, उसका क्षेत्र भी भिन्न और काल भी भिन्न होता है। यह तो प्रीतिभोज चलता है। भेदज्ञान की पराकाष्ठा है। भले चार दिन के लिये आये हों, लेकिन एक दिन में चार दिन का माल मिल जाये ऐसा है। प्रफुल्लाबेन!

अरे प्रभु! एक बार बात तो सुन। इस भेदज्ञान की बात तो सुन। तेरे मकान और पत्नि, बच्चे और कुटुंब और पैसा टका तो, आहाहा! उन्हें तो हम परद्रव्य में (भी) कहते नहीं क्योंकि वे हेय तत्त्व नहीं हैं। वे तो पृथक तत्त्व होने से, आहाहा! वे तो क्या कहें? उन्हें व्यवहार ज्ञेय कहें तो कहें, बाकी तो कुछ (नहीं हैं)। आहाहा! यहाँ तो द्रव्य और पर्याय के बीच के भेदज्ञान की बात चलती है।

द्रव्य वह स्वद्रव्य, सामान्य वह स्वद्रव्य और विभाव-विशेष पर्यायें, वे सभी परभाव होने से परद्रव्य हैं। परद्रव्य का कारण दिया कि परभाव होने से परद्रव्य हैं। क्योंकि कोई तो उदयभाव से, कोई उपशमभाव से, कोई क्षयोपशम और कोई क्षायिकभाव, आत्मा के साथ लक्षण मिलता नहीं है।

वे परस्वभाव हैं, और इसीलिए ही ही कहा है हों! कारण देकर परद्रव्य सिद्ध किया है। परद्रव्य हैं, ऐसा नहीं। परद्रव्य हैं, ऐसा नहीं। परद्रव्य क्यों? कि परस्वभाव हैं, आहाहा! वे आत्मा के स्वभाव नहीं हैं। वे आत्मा के विभाव हैं।

सम्यग्दर्शन है न? वह आत्मा का विभाव है। हें? और विभाव होने से वह परद्रव्य है। आहाहा! कहाँ ले जाना है, प्रभु? आत्मा में ले जाना है, भाई! तेरा स्वरूप ऐसा है, बापू! आहाहा! पर्याय का लक्ष छोड़ दे। पर्याय प्रगट करनी है मुझे। नहीं होगी। पर्याय प्रगट करनी है अर्थात् परद्रव्य का कर्ता बन गया। सम्यग्दर्शन का कर्ता वह परद्रव्य का कर्ता है। लोकालोक का कर्ता, सम्यग्दर्शन का कर्ता, आत्मा नहीं है, अकर्ता है। आहाहा! उसको जाननहार कहना भी व्यवहार है। आहाहा! अकारक और अवेदक आत्मा है। बंध और मोक्ष का करनेवाला नहीं है। प्रभु! सुन बात तेरी, आहाहा!

बड़े घर का प्रस्ताव आया है, आहाहा! मना मत करना! गुरुदेव कहते थे, बड़े घर का रिश्ता आया है, कन्या लेकर आये हैं बड़े घर की। तेरे घर पर देने के लिये। ना मत करना, आहाहा! ऐसे ही कुंदकुंदभगवान कहते हैं (कि) स्वद्रव्य और परद्रव्य का विभाग हम करते हैं तो अभी ना मत करना। वे कथंचित् तो जीव के परिणाम हैं कि नहीं? (नहीं हैं) क्योंकि परद्रव्य में कथंचित् लागू नहीं पड़ता। सर्वथा भिन्न हैं। धीरे-धीरे सब बात (आती है)। धीरे-धीरे सारी बात आती है, आहाहा! पर्याय यदि कहें तो कथंचित् भिन्न-अभिन्न तुझे भासित हो। लेकिन हम तो उसे पर्याय ही नहीं कहते। हम तो उसे

परद्रव्य कहते हैं। इसके (क्लिप के) साथ आत्मा को कथंचित् भिन्न-अभिन्नपना नहीं लागू पड़ता, वह सर्वथा भिन्न है। उसी प्रकार, पर्यायमात्र परद्रव्य होने के कारण सर्वथा भिन्न है, अत्यंत भिन्न है, (ऐसा मानेगा) तब दृष्टि प्राप्त होगी। और दृष्टि प्राप्त होने के बाद संवर, निर्जरा, मोक्ष के परिणाम कथंचित् भिन्न-अभिन्न (हैं), ऐसा ज्ञान तुझे हो जायेगा। आहाहा! ऐसा ज्ञान हुए बिना भी रहेगा नहीं। लेकिन ऐसा ज्ञान होता है तो भी वह ज्ञेय है। उस ज्ञेय की महिमा और अधिकता मुझे नहीं आयेगी। आहाहा! फिर से, फिर से। कि स्वद्रव्य और परद्रव्य का जहाँ विभाग किया, परिणाममात्र से लक्ष छूट गया और भगवान आत्मा में लक्ष आया, दृष्टि अभेद में गई, अनुभूति हुई। उस अनुभूति होने के काल में, अनुभूति कैसे हुई? कि (पर्यायमात्र) परद्रव्य है- ऐसा मानने से अनुभूति हुई। वह परद्रव्य है ऐसा मानने से जब अनुभूति हुई, तब अनुभूति से आत्मा अनन्य, क्षणिक अभेदपने अनुभव में आया तब ज्ञान प्रगट हुआ, दृष्टि के साथ ज्ञान(प्रगट हुआ)। वह ज्ञान ऐसा जानता है कि अतीन्द्रिय आनंद की पर्याय से मेरा आत्मा सहित है। लेकिन सहित के ऊपर वजन नहीं है, रहित का वजन और सहित का हल्के से ज्ञान करना। उसके ऊपर वजन मत देना, आहाहा! हल्के से, वजन मत देना। अभेद कथंचित् है, आहाहा!

सर्वथा भिन्न है उसके ऊपर वजन दे। फिर अभेद- हलके से देख लेना, जान लेना। कथंचित् अभिन्न है- हलके से कोई सुने नहीं इसप्रकार बोलना। और सर्वथा अभिन्न, सब सुनें इसप्रकार डंके की चोट पर कहना। स्वद्रव्य और परद्रव्य की भिन्नता है।

मुमुक्षुः- फिर से, स्वतंत्रता का ढिंढोरा। वह ही मजबूती से...

उत्तरः- क्या कहा? कि जब स्वद्रव्य और परद्रव्य का विभाग ख्याल में आया, दृष्टि जीव में जाती है, अनुभूति होती है, तब उस अनुभूति से आत्मा अनन्य (है) ऐसा ज्ञान होता है। ऐसा श्रद्धान नहीं होता किन्तु ऐसा ज्ञान होता है। उस ज्ञान का नाम व्यवहार है। उस ज्ञान का नाम निश्चय नहीं है। अन्य है वह निश्चय है, और अनन्य का ज्ञान वह व्यवहार है। उस व्यवहार को, आहाहा! हल्के से सहित है ऐसा जानना और जोर से रहित है ऐसा मानना।

मानने में जोर करना लेकिन सहित को जानने में तू उसका जोर मत देना, क्योंकि अनंतगुणों से जो आत्मा स्वद्रव्य अभेद है, आहाहा! उसमें वह पर्याय अभेद होती है क्षणिक, लेकिन वह क्षणिक अभेद है। वह अनित्य तादात्म्य है, नित्य तादात्म्य नहीं है। क्योंकि पर्याय पलटती है, आहाहा! पलटते हुए ज्ञान को जाननेवाला ज्ञान पलटता है लेकिन दृष्टि नहीं पलटती। क्योंकि (ऊंचे स्वर से) सर्वथा भिन्न, सर्वथा भिन्न, सर्वथा भिन्न, सर्वथा भिन्न, (नीचे स्वर से) कथंचित् अभिन्न, कथंचित् अभिन्न, कथंचित् अभिन्न, कथंचित् अभिन्न, क्योंकि पर्याय पलटती है किन्तु दृष्टि पलटती नहीं। क्योंकि दृष्टि तो सर्वथा भिन्न में गई है। सूक्ष्म बात है यह।

मुमुक्षुः- एकदम बराबर है। दृष्टि के विषय का जोर है, एक में।

मुमुक्षुः- दोनों पक्षों का?

उत्तरः- दोनों पक्षों को जैसा है वैसा जानना चाहिये। हाँ! सम्यग्ज्ञान में जैसा है वैसा, रहित का श्रद्धान और सहित का ज्ञान। रहित का श्रद्धान वह निश्चय और सहित का ज्ञान वह व्यवहार। और व्यवहार (को) अभूतार्थ और असत्यार्थ जानना, आश्रय करने योग्य नहीं है। आहाहा! वह ज्ञेय हुआ, वह

आश्रय करने योग्य नहीं है। ध्येय का आश्रय और ज्ञेय का ज्ञान। ध्येय का ध्यान और ज्ञेय का ज्ञान। समय एक। आहाहा!

मुमुक्षुः- आचार्य भगवान सुप्रीम कोर्ट के जज की तरह कुर्सी पर बैठे हैं।

मुमुक्षुः- न्याय दिया है सच्चा। स्वद्रव्य-परद्रव्य का फैसला चलता है।

उत्तरः- भाई को भाव आया वह सही है।

मुमुक्षुः- एकदम न्यायवाला भाव आया है।

उत्तरः- एकदम! न्याय से बात चलती है न? हें? वीतराग की गद्दी है न यह तो। सामने शास्त्र है न? परद्रव्य कहा है न? तो परद्रव्य की व्याख्या हुई न अपनी। आहाहा! इसमें लिखा हुआ है न? संस्कृत में है। संस्कृत में है, परद्रव्य हों! है। बेन, देख लेना। लिखा है कहीं?

मुमुक्षुः- **परस्वभावत्वात् , अत एव परद्रव्यं भवति।**

उत्तरः- आहाहा! **परस्वभावत्वात्, अत एव परद्रव्यं भवति।** दूसरी लाइन है। संस्कृत की।

मुमुक्षुः- यह कौनसी गाथा है?

उत्तरः- ५० नंबर की गाथा।

मुमुक्षुः- नियमसार ५० नंबर की।

उत्तरः- नियमसार, शुद्धभाव अधिकार, गाथा नंबर ५०। उसमें सातों ही पर्यायों को परभाव होने से परद्रव्य कहा है, आहाहा! और अंतःतत्त्व एक शुद्धात्मा स्वद्रव्य है। और परद्रव्य होने से कथंचित् भिन्न-अभिन्न श्रद्धा में होता नहीं। आहाहा! स्वद्रव्य को और परद्रव्य को कथंचित् भिन्न-अभिन्न लागू नहीं पड़ता। भिन्न ही हैं। लेकिन उसके साथ एक ज्ञान प्रगट होता है, श्रुतज्ञान। उसका एक अंश व्यवहार है, वह जानता है कि आनंद की पर्याय से, सम्यग्दर्शन की पर्याय से आत्मा सहित है ऐसा जानता है। लेकिन वह जानना पलटता है क्योंकि पर्याय वृद्धिंगत होकर पलटती है लेकिन रहित है वह तो पलटता नहीं है।

श्रद्धा को पलटने का प्रश्न नहीं है। रहित है-रहित है-रहित है, ऐसे ही आता रहता है। और उसमें (ज्ञान में) सहित है, सहित है (ऐसा आता है)। पहले ३० डिग्री से सहित, फिर ३१ डिग्री से सहित। शुद्धि- शुद्धि की वृद्धि। शुद्धि की वृद्धि बढ़ती है और बढ़ती दशा से सहित है। अर्थात् पर्याय बढ़ती है और बढ़ती दशा से सहित- सहित-सहित-सहित, तो सहित का विषय पलटता है और रहित का विषय पलटता नहीं है। ख्याल आया? अनुभव हुआ, निर्जरा होती है न, शुद्धि की वृद्धि? तो शुद्धि की वृद्धि जो होती है, आनंद की वृद्धि, उस पर्याय से अनन्य, सहित, ऐसा ज्ञान जानता है। लेकिन वह ज्ञान, व्यवहार ज्ञान का विषय पलटता है। निश्चय ज्ञान का और श्रद्धा का विषय पलटता नहीं। न पलटे वह मैं हूँ। पलटे वह मैं नहीं। जानने के लिये है, आहाहा!

गोसरभाई! यह १५० नंबर का सूत काता जाता है इस समय, १२० नंबर का नहीं, आहाहा! कहा था, कि बादाम का मैसूर है। यह शारदाबेन का चने के आटे का मैसूर नहीं है। गुरुदेव कहते थे कि एक सेर आटे में दो सेर घी, चने के आटे के मैसूर में. और शक्करपारे होते हैं, एक सेर आटे में चार सेर घी समा जाता है। वे कहते थे। उन्होंने अनुभव किया होगा। शक्करपारे होते हैं। बोलो! उन्होंने तो

बहुत देखा है न, आहाहा!

यहाँ कहते हैं प्रभु! एक बार बात सुन! तेरे शुद्धात्मा की बात तूने सुनी नहीं है। पर्याय मेरी है-मेरी है-मेरी है, इसप्रकार ममता छूटती नहीं थी। ममता छूटती नहीं थी, ऐसा कुंदकुंद भगवान को पता चला। परद्रव्य है, जा! परद्रव्य? ममता छूट गई। ममता छूट गई। यह आशीष मेरा, अरे! ये तो कहीं का कहीं गया, लेकिन पर्याय मेरी! पर्याय जीव की या परद्रव्य है? जीव के परिणाम ही नहीं होते, ले! अब तो ममता छोड़! आहाहा! परिणाम परद्रव्य है। ममता करना मत, आहाहा!

अद्भुत गाथा है। अद्भुत गाथा है। चमत्कारिक गाथा है, आहाहा! ३८ गाथा और एक यह ५० गाथा और एक परमार्थ प्रतिक्रमण की पाँच गाथा, रतन! आहाहा! टोंच है नियमसार का, आहाहा! दो और पाँच, सात गाथा! सप्तम गुणस्थान आ जाये, आहाहा! **वे परस्वभाव हैं।** न्याय दिया, कि परद्रव्य क्यों हैं? स्वयं न्याय दिया कि परस्वभाव हैं इसलिए हम उन्हें परद्रव्य कहते हैं। अब आगे।

सर्व विभावगुणपर्यायों से रहित, आहाहा! पहली लाइन में 'विभावगुणपर्यायें' ली थी न, उसे वापस याद करते हैं। **सर्व विभावगुणपर्यायों से रहित,** आहाहा! रहित और सहित। आहाहा! रहित स्थायी चीज है और सहित बदलती बात है। सहित बदलता है किन्तु रहित बदलता नहीं, आहाहा! सहित में बदलाव है। शुद्धि की वृद्धि होती जाती है न? पहले समय सहित, दूसरे समय सहित, सहित, सहित, वह व्यवहार का विषय बदलता है। अर्थात् साधक को व्यवहारज्ञान जो प्रगट होता है, उसका विषय बदलता हुआ है। और साधक को जो निश्चयनय प्रगट हुआ है उसका विषय बदलता नहीं है। क्योंकि उसका विषय तो सामान्य, सामान्य, ज्ञायक चिदानंद आत्मा एक है, आहाहा! उसमें कुछ बढ़-घट नहीं होती। व्यवहारनय के विषय में घटता नहीं है लेकिन बढ़ता है। लेकिन बढ़ती हुई दशा को जाननेवाले ज्ञान को वह बढ़ती दशा बढ़ती है उसके पलटाते-पलटाते, पलटाना पड़ता है ज्ञान को, आहाहा! कि चालीस डिग्री हुई तो दूसरे समय (भी) चालीस डिग्री, ऐसा नहीं है, तो वह निश्चय हो जाता है। लेकिन पर्याय पलटती है और ज्ञान भी पलटता है इसलिए व्यवहार है। व्यवहारनय पलटती हुई बात करता है, निश्चयनय नहीं पलटता है। अंदर की बात है सारी। हाँ! सारी। शुद्धि की वृद्धि होती है न साधक को? अर्थात् पर्याय वृद्धिंगत होकर अभेद होती है तो उसको जाननेवाला ज्ञान भी पलटता है, आहाहा! उस ज्ञान का विषय एक नहीं रहता। यदि उस व्यवहारनय का विषय एक रखे, तो साधक सिद्ध नहीं होता। दूसरा पक्ष वृद्धिंगत होता है और बढ़ती दशा को ज्ञान जानता है। उस ज्ञान का नाम व्यवहार है। भेद को जाने वह व्यवहार और अभेद को जाने वह निश्चय, आहाहा! माल भरा है इसमें तो।

मुमुक्षुः- आपने कहा था परद्रव्य पलटता है। स्वद्रव्य नहीं पलटता।

उत्तरः- पलटता नहीं। परद्रव्य पलटता है। और उसको जाननेवाला ज्ञान भी पलटता है। लेकिन स्वद्रव्य को जाननेवाला ज्ञान नहीं पलटता क्योंकि स्वद्रव्य पलटता नहीं है। स्वद्रव्य पलटे तो उसे जाननेवाला ज्ञान पलटे। स्वद्रव्य तो एकरूप है अनादि अनंत। तो उसे जाननेवाला ज्ञान भी पलटता नहीं है। आहाहा! कोई गाथा है यह तो! अद्भुत गाथा है! बहुत गहराई है, बहुत, आहाहा! हमारी तो शक्ति नहीं है इसमें, इतने भाव ब्रह्माण्ड के भरे हैं। हम तो शक्ति अनुसार, आहाहा! प्रभु! अपनी शक्ति

अनुसार स्वाध्याय करते हैं। आपने तो इसमें लिखा है, भाव ब्रह्मांड के भरे हैं, आहाहा!

वे परस्वभाव हैं, और इसीलिए परद्रव्य हैं। सर्व विभावगुणपर्यायों से रहित, सर्व ले लिया। विभावगुणपर्याय से, चारों पर्याय से, कोई भी पर्याय बाकी नहीं, सभी पर्यायें। परिणाममात्र से रहित। बंध-मोक्ष से रहित, नवतत्त्व से रहित, प्रमत्त-अप्रमत्त से रहित, चौदह गुणस्थान से रहित। **शुद्ध-अन्त:तत्त्वस्वरूप स्वद्रव्य उपादेय है।** आहाहा! वह परद्रव्य है, अब स्वद्रव्य, स्वद्रव्य क्या? कि **शुद्ध-अन्त:तत्त्वस्वरूप स्वद्रव्य उपादेय है।** अब, वह स्वद्रव्य क्या है? परद्रव्य की व्याख्या हो गई। अब स्वद्रव्य क्या है? परद्रव्य में क्या है और स्वद्रव्य में क्या है? दोनों बताने चाहिये न?

परद्रव्य अर्थात् पर्यायमात्र परद्रव्य। और स्वद्रव्य कौन? और स्वद्रव्य में क्या? उसमें सात तत्त्व लिये। इसमें क्या लोगे? सुन! संक्षेप में कह देते हैं। विस्तार से कल लेंगे। क्योंकि भाई कल जाने वाले हैं, इसलिए संक्षेप में कह देते हैं। भले ही पाँच मिनट देर हो। **वास्तव में** क्या कहा? **शुद्ध-अन्त:तत्त्वस्वरूप स्वद्रव्य उपादेय है।** अब हेय की बात पूरी हो गई। अब उपादेय की बात समझाते हैं। आत्मा की बात। **वास्तव में सहजज्ञान-सहजदर्शन-सहजचारित्र-सहजपरमवीतरागसुखात्मक शुद्ध-अन्तस्तत्त्वस्वरूप इस स्वद्रव्य का आधार,** अर्थात् इन गुणों का आधार।

सहजज्ञान वह गुण, **सहजदर्शन** गुण, **सहजचारित्र** वह त्रिकाली गुण, **सहजपरमवीतराग** वह सुख गुण, ऐसे **शुद्ध-अन्तस्तत्त्वस्वरूप इस स्वद्रव्य का** अर्थात् इन स्वगुणों का आधार, आहाहा! गुणों का आधार गुणी है। गुणों का आधार गुणी है। यह **आधार सहजपरमपारिणामिकभावलक्षण (-सहज परम पारिणामिक भाव जिसका लक्षण है ऐसा) कारण समयसार है।** इस गुणी के आधार से गुण हैं। पर्याय के आधार से, आहाहा! गुण नहीं हैं। ये जो गुण हैं इन्हें आधार हो तो **परम पारिणामिक भाव लक्षण कारण समयसार है**।

सोना, सोने के आधार से पर्याय तो नहीं है क्योंकि पर्याय तो परद्रव्य है। लेकिन सोना कैसा? सोना कैसा? कि जिसमें चिकनाई, भारीपन, जिसमें होता है। वे गुण हैं, उन गुणों का आधार पर्याय है या सुनार है? कि नहीं। गुण गुण और गुणी के आधार से होते हैं। गुण गुणी के आधार से होते हैं। मिठास, मीठापन सब गुड़ के आधार से हैं। ऐसे ही गुणों के आधाररूप परमपारिणामिक जिसका स्वभाव है ऐसा कारण परमात्मा, उसके आधार से गुण हैं। उसे स्वद्रव्य कहने में आता है और वह उपादेय है।

ॐ